SHODH CHETNA – YEAR-8, VOL. 1 (JAN. TO MAR., 2022) ISSN : 2350-0441
A Peer-Reviewed & Refereed International Multifocal Research Journal
IMPACT-FACTOR SJIF - 5.999
Paper Recieved : 15th March 22 Paper Accepted : 25th March 22

प्रसन्नराघव नाटक का वर्णात्मक अध्ययन

□ डॉ. आनन्दराम पैकरा*

शोध सारांश

संस्कृत नाट्य–साहित्य परम्परा में नाटककार 'जयदेव (13वीं शताब्दी) विरचित 'प्रसन्नराघव' साहित्य–जगत् में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। सात–अंकों में वर्णित प्रस्तुत नाटक सकलगुणों के आश्रय, दिव्यादिव्य, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के लोकोत्तर पावन चरित्र से संबंधित है।

मुख्य शब्द :–प्रसन्नराघव, नाटक, परम्परा, विशिष्ट स्थान, दिव्यादिव्य, सहवास, सदसद व्यवहार आदि।

परिचय

यद्यपि संस्कृत–वाङ्मय में श्रीरामचन्द्र जी से सम्बद्ध अनेकानेक नाट्य हैं, किन्तु प्रसन्नराघव अपने वैशिष्ट्य के कारण उन सभी में भिन्न् स्थाना रखता है। सदसद–व्यवहार की दृष्टि से 'प्रसन्नराघव' उन सभी सद्गणों की कसौटी पर सार्थक सिद्ध होता है, जो लौकिक– व्यवहार की दृष्टि से सर्वोचित् हैं। प्रस्तुत नाटक के अंतर्गत मानवोचित्–सद्व्यवहार को जनसामान्य रूप में सरस ढंग से अभिक्त करने का सफल प्रयास किया गया है।

'प्रसन्नराघव' में कवि ने गुणों की अत्यधिक प्रशंसा करते हुए उदात्त–गुणों वाले श्रीराम को ही समस्त गुणों का आश्रय बताया है1 क्योंकि जहाँ गुणों की अधिकता होती है, लोभवश अन्य गुण भी वहीं सहवास प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं। इसी संदर्भ में आगे कहते हैं कि सज्जनपुरुषों के नाममात्र से ही उनके गुणों का ज्ञान हो जाता है।2 दिव्यादिव्य धीरोदात्त श्रीरामचन्द्र जी अपने श्रेष्ठ गुणों से लोगों के चित्त को आनन्दित करते हैं, इसी कारण उन्हें गुणग्राम की उपाधि दी गई है3 और श्रेष्ठ गुणों वाले महान् पुरुष श्रीराम का वर्णन करने से ही यह काव्य सभी के हृदय को आह्लादित करने में पूर्ण समक्ष है।4 अतः प्रसन्नराघव स्वयं में सद् एवम् असद् गुणों का विवेचन करता हुआ प्रतीत होता है।

प्रथम अंक में राजा जनक द्वारा सीता स्वयंवर की उद्घोषणा को सुनकर रावण और वाणासुर सहित अनेक राजा अपनी–अपनी वीरता का प्रदर्शन करने हेतु एकत्र होते हैं। रावण और बाणासुर अपने–अपने भुजबल को प्रशंसा करते हुए आपस में ही वाक्यलह करते हैं किन्तु शिव धनुष किसी के भी द्वारा अपने स्थान से उसी प्रकार विचलित नहीं होता जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रियों का मन किसी भी परिस्थिति में अपने धर्म से तनिक भी विचलित नहीं होता।5

* सहायक प्राध्यापक (संस्कृत), शासकीय राम भजन राय एन.ई.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जशपुर नगर (छ.ग.), पिन कोड-496331, मोबाइल : 9424981586

द्वितीय अंक में दो वेशधारी राक्षसों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि राजा दशरथ ने अपनी कुल–मर्यादा का पालन करते हुए कौशिक मुनि की याचना पर अपने प्राणों से भी प्रिय दोनों पुत्रों को उन्हें समर्पित कर दिया क्योंकि मुनि सर्वथा सम्माननीय होते हैं।6 'प्रसन्नराघव' में विशुद्ध–विद्या को जल में तेल–बिन्दु के समान बताया गया है, जैसे– तेल जल में चारों ओर समान रूप से फैल जाता है उसी प्रकार विशुद्ध–विद्या भी सर्वत्र अपना प्रभाव प्रकट करती है।7

इसी अंक में राम और सीता उपवन में प्रथम बार एक–दूसरे का दर्शन करते हैं। सर्वप्रथम पुष्पचयन के समय जब राम को मणिनुपूरों की आवाज सुनाई देती है तो वे अपने रघुकुल मर्यादा का सतत् ध्यान रखते हुए सजग होकर स्वयं कहते हैं कि– "इसलिए हमें इधर नहीं देखना चाहिए। पराई स्त्री है क्या?"8 श्रीराम का यह वाक्य उनकी स्त्रियों के प्रति आदरभाव की मर्यादा को सूचित करता है किन्तु उन्हें जब राजकुमारी का ज्ञान होता है तो "निर्दोषदर्शना हि कन्यका भवन्ति" उक्ति के अनुसार संकोच का त्याग कर सीता का प्रथम दर्शन करते हैं और शालीनता से सीता के यौवन–सौन्दर्य का मनोहारी कवित्यमय वर्णन करते हैं।

'प्रसन्नराघव' स्त्रीयोचित नारी–मर्यादा और शिष्टता का भी पूर्णतः पालन करता हुआ प्रतीत होता है। सीता जी और लक्ष्मण के प्रथम साक्षात्कार पर ही दोनों के हृदय में परस्पर मातृवत् और पुत्रवत् भाव प्रकट होता है, जो संस्कारजनित व्यवहार है,9 आदर्श नारी–स्वरूप सीता जी को जब राम की उपस्थिति ज्ञात होती है तो वे शालीनता और शिष्टता का पालन करती हुई गृहप्रतिगमन हेतु उदय हो जाती है किन्तु राम दर्शन की प्रबल उत्कण्ठा से पुनः अन्य कारण से लौट आती हैं।10 तत्पश्चात् सीता जी राम को देखकर मुग्ध होने पर भी सखियों से अपने मनोभावों को छिपाने का प्रबल करती हैं। उनका यह व्यवहार वियोचित् स्वाभाविक लज्जा को व्यक्त करता है। किन्तु सखियों से हृदय का भाव छिपाना बेकार होता है, अतः सयानी सखी सीता के हृदयस्थ 'राम' को जान लेती हैं।11 सामान्यतः कुलस्त्रीयाँ प्रणय संबंधित चर्चा पर लज्जाशील होती हैं क्योंकि कहा भी जाता है कि लज्जा ही स्त्रियों का वास्तविक आभूषण होता है।

'प्रसन्नराघव' के तृतीय अंक में ऋषि विश्वामित्र दोनों कुमारों के साथ स्वयंवर मण्डप में जाते हुए मन ही मन में सीता और राम के प्रणय संबंध में विचार करते हैं और लक्ष्मण की बात से वे इस विषय पर विश्वस्त भी हो जाते हैं क्योंकि स्वभावतः भोले–भाले बालकों के वचन देवताधिष्ठित होते हैं।12 सीग्ध्वज जनक के द्वारा समुचित आतिथ्य स्वीकार कर विश्वामित्र उनके सद्गुणों से प्रसन्न हो उन्हें सकल भूमण्डल का अलंकार कहते हैं।13 किन्तु इस विषय में राजा जनक अत्यधिक नम्रता का प्रदर्शन करते हुए अत्यधिक सुशोभित होते हैं।14

राजा जनक के द्वारा श्रीराम के विषय में उत्कण्ठापूर्वक विश्वामित्र से प्रश्न पूछना उनके लोकव्यवहार क सुव्यवस्थित रूप प्रकट करता है और अपने मनोरथ के पूर्ण होने की उत्काण्ठा से आनन्दित भी होते हैं।15 इसके अनन्तर वे श्रीराम के कुल एवं पिता के विषय में इच्छा प्रकट करते हैं तो ऋषि विश्वामित्र उनकी इस जिज्ञासा को शांत करते हुए राजा दशरथ की प्रशंसा करते हैं।16 इस प्रकार विदेहराज जनक की उदारता, नम्रता और लौकिक शिष्ट–व्यवहार से ऋषि अत्यधिक प्रभावित होते हैं, क्योंकि सज्जन पुरुष अपने विनम्र स्वभाव से ही सुशोभित होते हैं।17 प्रसन्नराघव में राजा जनक के व्यवहार से एक पिता का लौकिक सद्व्यवहार स्पष्ट होता है, जिस प्रकार सामान्यजन अपनी पुत्री के विवाह पूर्व सभी शंकाओं का निराकरण भली–भाँति करते हैं और उत्तर वर से पुत्री का विवाह कर सन्तुष्ट होते हैं, उसी प्रकार राजा जनक भी धनुष भंग होने पर सीता का विवाह राम से करके आनन्दित होते हैं।

श्रीरामचन्द्र जी की अतिशय विनम्रता और धैर्य का परिचय चतुर्थ अंक में तब दिखाई देता है, जब

Scanned with CamScanner

गुरु विश्वामित्र को आज्ञा से शिव धनुष को चढ़ाने में धनुष टूट जाता है और उससे कुपित परशुराम जी वहाँ पहुँच जाते हैं। अत्यधिक क्रोध के आवेश में परशुराम ताण्डयायन की पूरी बात बिना सुने भ्रमवश रावण को धनुषभंग का कारण समझते हैं इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य क्रोध में अपनी विवेकशक्ति खो देता है किन्तु पुनः सत्य ज्ञान होने पर परशुराम जी श्रीराम के ऊपर कुपित होते हैं।18 सर्वप्रथम वे श्रीराम को देखकर उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं,20 वहीं श्रीराम स्वयं उन्हें विस्मय योग्य स्वभाव वालों के शिरोमणि बताते हैं।20

यद्यपि विनय सभी गुणों की जननी होती है। श्रीराम के विनम्र सद्व्यवहार से प्रभावित होकर ही परशुराम का क्रोध भी स्वयं संशय करने लगा21 किन्तु पुनः कुपित हो जाते हैं। इसके विपरीत श्रीराम जी अपने सद्व्यवहार और धैर्य से उन्हें शांत करने की चेष्टा करते हैं22 और स्वयं को निर्दोष बताते हैं।

तथापि श्रीराम का अनुनय–विनय उनके क्रोध को चन्दनदिग्धनाराच के समान और भी उग्र करता है और वे राम को युद्ध हेतु ललकारते हैं किन्तु रामचन्द्र जी ब्राह्मणभक्ति रूप धर्म का पालन करते हुए अपने विनीत स्वभाव से तनिक भी च्युत नहीं होते हैं23 क्योंकि ब्राह्मण सर्वथा आदरणीय होते हैं। अतः निरन्तर श्रीराम उनके क्रोध को शान्त करने में लगे रहते हैं और उनकी बातों से उद्विग्न न होकर धैर्यपूर्वक स्थित रहते हैं24 और तो और वे लक्ष्मण द्वारा भार्गव के प्रति व्यङ्गयपूर्ण वचन को सुनकर स्वयं लक्ष्मण को इस अविनय से रोकते हैं25 क्योंकि गुरुजनों के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव ही श्रेष्ठ सद्गुण माना जाता है।

'प्रसन्नराघव' में सद्–व्यवहार पर बहुत ही सूक्ष्म और स्पष्ट वर्णन किया गया है। लौकिक दृष्टि से पुत्र पिता का ही प्रतिरूप होता है किन्तु यहाँ शान्ति के प्रतीक जमदग्नि के पुत्र परशुराम पिता के गुण के विपरीत दिखाई देते हैं।26 क्रोध के कारण परशुराम अपने कुल, चरित्र और धर्म के विरुद्ध आचरण करते हुए प्रतीत होते हैं।27 वस्तुतः क्रोध मनुष्य के विवेकशक्ति को क्षीण कर देता है और इसी कारण वह अपना अर्जित यश उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे जुआरी धन को गँवा देता है।28 जब अनेकानेक प्रकार से समझाने पर भी परशुराम का क्रोध शान्त नहीं होता अपितु वे धृष्टतापूर्वक दूसरों को भी अपने क्रोध का विषय बनाते हुए गुरु विश्वामित्र को भी निन्दा करने लगते हैं, तब गुरु की निन्दा सुनकर श्रीराम के धैर्य की सीमा समाप्त हो जाती है29 और वे गर्वपूर्वक उनके क्रोध का विरोध करते हैं।30 क्योंकि धर्मशास्त्रानुसार गुरु की निन्दा करना एवं सुनना घोर पाप माना जाता है।

तत्पश्चात् परशुरम अपने पास नारायण–धनुष को दिखाते हुए श्रीराम को उसपर प्रत्यश्चा चढ़ाने अथवा युद्ध करने हेतु ललकारते हैं। श्रीराम भी अपनी धैर्य की पराकाष्ठा स्वरूप धनुष पर प्रत्यश्चा चढ़ाना स्वीकार कर उस कार्य को सिद्ध करते हैं, तदनन्तर परशुराम उनकी वीरता से प्रसन्न होकर विष्णुस्वरूप श्रीराम की प्रशंसा करने लगते हैं किन्तु सज्जन पुरुष की भाँति श्रीराम आत्मश्लाघा से रहित स्वयं लज्जित हो उनसे क्षमा याचना करते हैं,31 जो श्रीराम के अत्यधिक विनम्रता का द्योतक है।

पंचम अंक में बालि और सुग्रीव के युद्ध चर्चा के विषय में दोनों के बैर का कारण बताते हुए जिस प्रसिद्ध लोकोक्ति का उदाहरण दिया गया है, व वस्तुतः लौकिक व्यवहार को ही व्यक्त करता है।32 कैकयी द्वारा वर माँगने पर राम के अभिषेक की इच्छा वाले राजा दशरथ राम के वनगमन पर अत्यधिक दुःखी होते हैं क्योंकि सज्जन व्यक्ति आत्मीयजन के दुःख से अत्यन्त दुखी होते हैं33 और यहाँ तक कि प्राणों का त्याग भी कर देते हैं। श्रीराम अपने पिता के वचन की रक्षा हेतु पुत्रधर्म का पालन करते हुए लक्ष्मण और सीता सहित वन को चले जाते हैं। यहाँ लक्ष्मण का भ्रातृस्नेह और सीता का पतिव्रता34 सद्धर्म स्पष्ट होता है। श्रीराम को माता द्वारा सीता और लक्ष्मण के विषय में शिक्षा देने पर प्रत्युत्तर में वे सीता और लक्ष्मण को अपना जीवन रूप अर्थात् प्राणों से भी श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं।35

Scanned with CamScanner

वस्तुतः 'प्रसन्नराघव' आदर्श भ्रातृप्रेम का लोकोत्तर उदाहरण प्रस्तुत करता है यहाँ तक कि सप्तम अंक में लक्ष्मण के मुर्च्छित होने पर राम अपना जीवन समाप्त करने हेतु उद्धत हो जाते हैं और लक्ष्मण के बिना अयोध्या में प्रवेश को महापाप समझते हैं।36 निश्चय ही सज्जन पुरुष का व्यवहार स्नेहवश नहीं अपितु स्वभावतः होता है।37

सीता जी श्रीराम जी आदर्श–सहधर्मिणी तथा नारी–जगत् को सती स्त्री के सदाचरण की शिक्षा देती हुई करुणा, नम्रता, त्याग, क्षमाशीलता, आत्मसमर्पण इत्यादि सद्गुणों का भव्यचित्र उपस्थित करती हैं।28 रावण द्वारा सीता का हरण कर लिए जाने पर वे अशोक वाटिका में राम के ध्यान में ही निमग्न रहती है जबकि रावण अनेक नीतियों से उन्हें आत्मसमर्पण के लिए प्रेरित करता है किन्तु उनका चित्त तनिक भी विचलित नहीं होता है।39 वाटिका में हनुमान द्वारा प्राप्त राममुद्रिका को देखकर वह धैर्य धारण करती हैं, क्योंकि पुण्यवान् व्यक्ति के लिए अग्नि ही रत्न हो जाता है।40

सप्तम अंक में विभीषण द्वारा सन्मार्ग41 बताये जाने पर भी रावण सीता को नहीं छोड़ता है और अपनी दुष्प्रवृत्ति के कारण ही अद्वितीय वीर राक्षसराज पतन को प्राप्त करता है क्योंकि दुर्जन व्यक्ति अपनी स्वाभाविक दुष्टता का त्याग किसी भी प्रकार नहीं करता है।42 श्रीराम–आदर्श पतिधर्म का पालन करते हुए अत्यधिक साहसपूर्वक सीता को रावण से मुक्त कराते हैं।

इस प्रकार 'प्रसन्नराघव' लौकिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से सत्–असत् की व्याख्या करते हुए "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" उक्ति को चरितार्थ करता हुआ लौकिक व्यवहार की दृष्टि से आदर्श प्रतीत होता है।

संदर्भ स्रोत

1. स्वसूक्तिनां पात्रं रघुतिलकमेव कलयतां कवितां को दोषः? स तु गुणगणानामवगुणः।
यदेतैर्निश्शेषैपरगुणलुब्धैरिव जग–त्यसावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः।। (प्रसन्नराघव, 1/12)
2. गुणग्रामाविसंवादि नामापि हि महात्मनाम्। यथा सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकरसुधाकराः।। (प्रसन्नराघव 1/5)
3. झटिति जगतीमागच्छनथाः पितामहाविष्टपान् महति पथि वो देव्या वाचः श्रमः समजापत।
अपि, कथमसो मश्चेदेन न चेदवगाहते रघुपतिगुणग्राम–श्लापासुधामवदीर्घिकाम।। (प्रसन्नराघव, 1/11)
4. न ब्रह्मविद्या न च राजलक्ष्मोस्तथा वचेव कविता कविनाम्।
लोकोत्तरे पुसि निवेश्वमाना पुत्रीव हर्ष हदवे करोति।। (प्रसन्नराघव, 1/13)
5. बाणस्य बाहुशिखरैः परिपोऽवमान नेदं धनुवल्हीत विश्चिदपोन्दुमौलैः।
कामतुरस्य वचसामिव सविधानैष्यथिंत प्रकृतिचाह मनः सतीनाम्।। (प्रसन्नराघव, 1/26)
6. तेन चावश्यं माननीयो मुनिशिच निजनपनाभ्यमपि प्रियतमौ निजतनयो तस्य समर्पितौ।
(प्रसन्नराघव, 2, पृ. 99)
7. वार्ता च कौतुकवती, विमल च विद्या, लोकोत्तरः परिमलश्च कुरङ्गनाभेः।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणी दुर्निवारमेतात्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ।। (प्रसन्नराघव, 2/2)
8. तदलमस्माकमितोऽवलोकनेन परस्त्रीति अङ्कपि सङ्कोचाव रघुणाम्। (प्रसन्नराघव, 2, पृ. 111)
9. इमे पश्चन्त्या मम निजकला इव व्हामललितं ह्रदयं र्धृतते।
केवमस्यं सुमित्रावामिव मे सुचिरप्रवृत्त चित्तवृत्तिः। (प्रसन्नराघव, 2, पृ. 122)
10. हाय! किमत्राऽस्माकम्? तदेहि निवगृहमेव ब्रजाम। हला।
एकं विस्मृतास्मि। ननु स सहकारपाद– पोऽवलोकनीयो यस्य कसनथा लतजा सह संगममभिलपन्ति ममाऽम्बाः। (प्रसन्नराघव, 2, पृ. 123)
11. आलन्धलिजनेऽपि ह्रदयापलापेन। अहो। ते घातुर्यम्, वत् आकारप्रकटनेनैवाकारगुप्तिं कृतवत्यसि। (प्रसन्नराघव, 2, पृ. 123)
12. देवताधिष्ठितानि हि मुग्धवचनानि भवन्ति। (प्रसन्नराघव, 2, पृ. 161)
13. राजहंसा इति सकलकुवलयोतंसा राजहंसा अमी। (प्रसन्नराघव, 2, पृ. 170)

Scanned with CamScanner

14. भगवन्। इदमस्मत् प्रचीनेषु शोभते, न तु मपि कतिपयग्रामटिकास्वामिनि। (प्रसन्नराघव, 2, पृ. 170)
15. यथाऽहं निस्सीमोत्सवसुभगभोगे भवकथापथातीते चेतःप्रणविनि रमे पुंसि परमे।
तथेवास्मिन् बाले दलदमल–नीलोत्पलदलोदरश्यामे रामे नयनपदवीमागतवति।। (प्रसन्नराघव, 3/22)
16. अवधिः खलु भाग्यवतां राजा दशरथः।
(प्रसन्नराघव, पृ. 187)
17. शोभन्ते एव विनयमधुराणामधरीकृतात्ममहिमानः कामं सत्यविधुरा अपि वाचः। (प्रसन्नराघव, 3, पृ. 188)
18. तन्मानं कुलमेव तर्कय रघोर्मच्छस्त्रधाराम्मसि।।
(प्रसन्नराघव, 4/13)
19. सौन्दर्य मनादपि प्रययति प्रौढिप्रकर्थं पुरां भेत्तारं मदनारिमप्यधरयत्युद्दामदोः क्रीडितम्।
मुग्धत्वं मदनारिमौलिशशिनोऽप्युत्कर्षमालाम्बते मूर्त्तस्तत किमसौ रसैर्विरचितः शृङ्गरवीरादभुतैः?।।
(प्रसन्नराघव, 4/14)
20. विस्मयनीयशीलानां शिखामणिरिति वक्तव्यम्।
(प्रसन्नराघव, 2, पृ. 234)
21. रामे चन्द्राभिरामे विनयवति शिशौ किं प्रकुप्यातिमात्रं?
(प्रसन्नराघव, 4, पृ. 236)
22. भगवन् निग्रहानुग्रहोः स्वाधीनोऽयं जनः; अलीकलोक–वार्त्तया निरपराधे मयि मुधा कोपकलङ्कितोऽसि।
(प्रसन्नराघव, पृ. 239)
23 हारः कण्ठं विशतु वदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु नः कज्जलं वा जलं वा
सम्पश्यामो ध्रुवमिह सुखं प्रेतभर्त्तुर्मुखं वा, वद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः।।
(प्रसन्नराघव, 4/23)
24. भो ब्रह्मन्। भवता समं न घटते सङ्ग्रामवार्त्तापि नः, सर्वे हीनबला वयम् बलवतां यूयं स्थिता मूर्द्धनि।
(प्रसन्नराघव, 4/25)
25. अलमिह माननीये मुनौ दुर्विनयवैदग्ध्येन।
(प्रसन्नराघव, पृ. 245)
26. कथं तथा शमषनसमृद्धस्य जमदग्नेस्तनयोऽपि शमदुर्गतोऽसि संवृत्तः? (प्रसन्नराघव, 4, पृ. 253)
27. क्व परशुरशुभस्ते? कुत्र गोत्रं पवित्रं? क्व धनुरिदमुदग्रं? निर्मलं कुत्र शीलम्?
घनसमरकराला कुत्र नाराचहेला? कुशकिसलयलीला कुत्र वा पर्णशला? (प्रसन्नराघव, 4/32)
28. यशोवृत्तं वित्त कितव इव विक्षोभतरलं तदेतस्मिन्वारे भृगुतिलक! मा हारय मुधा।। (प्रसन्नराघव, 4/35)
29. कथं भगवन्तं विश्वामित्रमधिक्षिपति? तदतः परं न सहिष्ये। (प्रसन्नराघव, पृ. 262)
30. तत्कोदण्डं कुलिशकठिनं भग्नमेतेन भग्नं मग्नं शल्यं तव हृदि महन्मग्मेतावता किम्।
त्रैयक्षं वा भवतु, यदि वा नाम नारायणीयं नैतत किश्चिद गणयति स मे दुर्मदो दोर्विलासः।।
(प्रसन्नराघव, 4/39)
31. अलमनेन। दुर्विनयपङ्कमलिनीकृतमात्मानं तावद्भवच्चरणनखकिरणतरङ्गिणीजलेन क्षालयामि।
(प्रसन्नराघव, 4, पृ. 271)
32. एकामिषामिलाषो हि बीजं वैरमहातरोः इति ख्यातमेतत्।
(प्रसन्नराघव, 4, पृ. 275)
33. न ज्ञातुं नाप्यनुज्ञातुं नेक्षितुं नाप्युपेक्षितम् सुजनः स्वजेन जातं विपत्पातं समीहते।। (प्रसन्नराघव, 5/2)
34. गहनविपिनवासोत्कण्ठया सम्प्रयातं प्रियतममनुयान्त्या तत्क्षणं राजपुया।
चरणकमलगुञ्जन्मञ्जुमंजीरशब्दैः स्फुटतरमुपदिष्टा बान्धवाः साधु वृत्तम्।। (प्रसन्नराघव, 5/13)
35. अयि मातः! निजजीवितेऽपि दक्षिणेन भवितव्यमित्यपि शिक्षणीयमेव? (प्रसन्नराघव, 5, पृ. 290)
36. अये। शान्तं पापं कठिन इव चेत्र्जीवितुमन्घ बिना वत्सं रामः पुनरयमयोध्यां प्रवशिति।।
(प्रसन्नराघव, 7/32)
37. न खलु स्नेहानुगुणप्रवृत्तयो महाभूतवृत्तयः।
(प्रसन्नराघव, 5, पृ. 310)
38. जाता सीता समुचिताविधिप्रक्रियावैजयन्ती।।
(प्रसन्नराघव, 5/29)
39. अपि खद्योतभासापि समुन्मीलति पद्मनी?।
(प्रसन्नराघव, 6, पृ. 382)
40. पुण्यवतामग्निरेव रत्नं भवतीति प्रवादः।
(प्रसन्नराघव, 6, पृ. 394)
41. उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्तये। चतुर्वोचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका।।
(प्रसन्नराघव, 7/1)
42. लङ्केश्चरेण दुष्टेन नयधर्मविभूषणः। विभिषणश्च न, पर विभवोऽपि पदा हतः।। (प्रसन्नराघव, 7/5)